भारतीय मुगल लघु चित्रों के हाशियों में विषय–वस्तु व चित्रकला के तत्व

मनीषा महावर
शोध छात्रा जे0जे0टी0यू0 झुन्झुनू राजस्थान
मोबाइल नम्बर 9001447103

शोध सार – भारतीय ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह माना जाता है कि मुगल साम्राज्य की स्थापना की साथ ही मुगल कलाओं ने भी भारत में प्रवेश किया। उस समय इस पर पूर्णतः ईरानी प्रभाव था। कालान्तर में यह माना जाने लगा है कि मुगल कला का अपना पृथक् अस्तित्व होतु हुए भी यह ईरानी प्रभाव से पूर्णतया मुक्त तो नहीं हुई है, लेकिन फिर भी पूर्ण भारतीय बन गई है।

मुगल कला का जन्म भारतीय एवं ईरानी कला शैली के सम्मिश्रण से हुआ। जब **'बाबर'** 1526 ई. में भारत आया तो बहिजाद नामक कलाकार को साथ लाया। यह प्रसिद्ध ईरानी चित्रकार था इसके साथ ही ईरानी तत्वों का प्रवेश भारतीय चित्रकला में हुआ। भारतीय वातावरण में हिन्दू व ईरानी चित्रकरों के सहयोग से चित्रकला का जो नवीन स्वरूप सामने आया वही मुगल कला कहलायी। अकबर ने भारतीय ईरानी चित्रकला की जिस शैली का सुत्रपात किया, वह कुछ दिनों बाद ही खत्म हो गई। वस्तुतः यह शैली भारतीय शैली बन गई। मुगल चित्रकला का सूक्ष्म अध्ययन करे तो पता चलता है कि किस प्रकार भारतीय चित्रकला ने अपना सिक्का जमा लिया।[1]

मुगल साम्राज्य का संस्थापक 'बाबर' कलानुरागी कवि, उच्चाकांक्षी प्रौढ़ गद्य लेखक था। इसका वर्णन उसकी आत्मकथा तुजुके–ए–बाबरी (बाबरनामा) जो तुर्की भाषा में लिखी है, पता चलता है। यह अपने शासनकाल में इतना व्यस्त रहा कि चित्रकला के विकास में विशेष योगदान न दे सका, फिर भी उसने अनेक चित्रकारों को संरक्षण तथा राजाश्रय प्रदान किया तथा जिस चित्र शैली की नींव डाली वह एशिया की सांस्कृतिक उपलब्धियों में एक प्रतिष्ठित स्थान पाने में सक्षम रही।

मूल शब्द :– ईरानी शैली, मनोरंजन, ऐतिहासिक, मुगल, चित्रकला, हाशिया, अलंकारिक, साज–सज्जा, संयोजन

बाबर की मृत्यु के बाद **'हुमायूँ'** उत्तराधिकारी बना। यह पिता के समान साहित्य तथा कला प्रेमी था। कला की अभिरूचि विरासत में मिली थी। पिता की भांति इनका जीवन भी शासन स्थापित करने हेतु कठिनाईयों में बीता।[2] शासन की उथल–पुतल के कारण जब हुमायूँ ईरान में आश्रय लेने गया, तब वापस काबुल आया, तो तब्रेज में 'ख्वाजा अब्दुल रसमद शिराजी' और 'मीर सैयद अली' से उनकी भेंट हुई। दिल्ली में अपना शासन मजबूत करने के बाद इन दोनों को सम्मानपूर्वक भारत में आमंत्रित कर दरबारी चित्रकार नियुक्त किया।[3] इन दोनों कलाकारों ने ईरानी शैली को भारतीय शैली में ढालकर चित्रकला के क्षेत्र में नवीन सम्भावनाओं को जन्म दिया।[4] हुमायूँ के सम्बन्ध में विद्वानों का कहना है कि वह इतना अधिक कला प्रेमी शासक था कि युद्ध के समय अपने साथ चित्रकारों व पोथियों को रखता था। फुरसत के क्षणों में या अवसर मिलते ही वह तुरन्त चित्र बनवाता था। समकालीन लेखक जौहर के अनुसार जब हुमायूँ अमर कोट में ठहरा हुआ था, तो उसके खेमे में एक सुन्दर फाख्ता आ गई उसने तुरन्त खेमे के दरवाजे बन्द कर दिये तथा चित्रकारों से चित्र बनवाकर तुरन्त मुक्त कर दिया। 'अकबर' के दरबार में ख्वाजा अब्दुल रसमद व मीर सैयद अली दोनों ही मुख्य चित्रकार रहे, चित्रकला का वास्तविक विकास अकबर के समय से दिखाई देने लग गया। वह स्वयं अच्छा चित्रकार व कला प्रेमी था। आईने–ए–अकबरी में अबुल फजल ने लिखा है कि अकबर ने कई चित्रशालाएं स्थापित

की जिसमें सौ से अधिक उच्च कोट के हिन्दू–मुस्लिम सभी वर्ग व जातियों के चित्रकार कार्यरत थे।[5] कला को बढ़ावा देने हेतु अकबर चित्रकारों को ऊँचे सम्मानों व पदों से सम्मानित कर वेतन भी बढ़ाता था। अकबर चित्रकला को अध्ययन व मनोरंजन का माध्यम मानते थे। इस दृष्टि से यह कला उन्नत होती रही। अकबर द्वारा चित्रकला को महत्व देने का दूसरा कारण यह भी था कि वे, इस कला के माध्यम से मृत को सजीव तथा सजीव को अमर बना देना चाहते थे। अबुल फजल ने लिखा है कि अकबर के समय में ईरानी और भारतीय चित्रकारों ने मिलकर इतनी उच्च कोटि की चित्र रचना की, कि जड़ पदार्थों में भी जीवन प्रतीत होता था।[6] 'पर्सी ब्राऊन' के अनुसार प्रारम्भिक अवस्था में मुगल चित्रशैली पूर्ण रूप से विदेशी थी परन्तु जैसे–जैसे मुगल सम्राट, भारतीय वातावरण में ढलते गये वैसे–वैसे चित्रशैली पूर्ण रूप से भारतीय होती गई। आईने–ए–अकबरी में उल्लेख है कि सम्राट की रूचि व्यक्ति चित्रण में अधिक होने के कारण वे स्वयं चित्र बनवाने के लिए बैठते थे। उन्होंने राज्य के तमाम उच्च पदाधिकारियों, उच्चवर्गों तथा अमीरों के शबीह बनाने के आदेश दिये। इन सभी आकृतियों में एक विशेष प्रकार की गतिशीलता दिखाई देती है।[7]

अकबर ने जिस चित्रशैली की आधारशिला रखी थी, वह उसके पश्चात् **'जहाँगीर'** काल में प्रौढ़ता को प्राप्त हुई।[8] पर्सी ब्राऊन के शब्दों में बाबर की विशेष कलात्मक चेतना, जहाँगीर के हृदय में सशक्त रूप में पुनर्जागृत हुई जान पड़ती है।[9] जहाँगीर की कला में रूचि प्रारम्भ से ही थी। भारत में यद्यपि मुगल शैली का शुभारम्भ अकबर के शासन में हुआ। समीक्षकों का उसके सम्बन्ध में कहना था कि वह सुरूचि सम्पन्न पहले दरजे का चित्रप्रेमी–प्रकृति सौन्दर्य उपासक, विज्ञानी, संग्रहकर्ता, विशद वर्णनकार, जिज्ञासु और प्रज्ञावादी था। उसकी साधना इतनी परिपक्त थी कि वह एक ही रंग रूप से तैयार एक मुखाकृति जो अनेक कलाकारों द्वारा मिलकर अलग–अलग आँख, नाक, कान और होंठ चित्रित किये गये हैं तो वह पहचान सकता था कि किस चित्रकार ने आँख बनाई व किसने भौंहे। इस कथन से यह प्रमाणित होता है कि जहाँगीर कितना बड़ा सूक्ष्मदर्शी कलामर्मज्ञ व कला पारखी था, इस कारण जहाँगीर के काल को **'चित्रकला का स्वर्णकाल'** के नाम से भी जाना जाता है।[10] शासन की डोर जहाँगीर के बाद **'शाहजहाँ'** ने सम्भाली किन्तु कला का स्वरूप बदल गया। इसकी रूचि चित्रकला में न होकर वास्तुकला में रही। वह चित्रकला की और कम ही ध्यान देता था। इस समय के चित्रों में सफाई, साज–सज्जा पर अधिक कार्य हुआ। तूलिका में कहीं भी कमजोरी प्रकट नहीं होती। फिर भी चित्र दरबारी अदब के पाश में जकड़े मिलते हैं।[11] इसके शासनकाल के दौरान इसके बेटे **'औरंगजेब'** ने इसे बन्दी बनाकर शासक की बागडोर अपने हाथ में थाम ली। औरंगजेब एक कट्टर सुन्नी, धर्मान्ध और रूढ़िवादी था। सत्ता सम्भालते ही कलाओं का वैभव खत्म होने लगा। चित्रकला की उन्नति भी रूक गई। यह स्वयं से सम्बन्धित ही यदा–कदा चित्र बनवाने लगा था। इसके युवावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक के चित्र प्राप्त हैं। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्धकाल तक के कई मुगल चित्र इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि चित्रण कार्य औरंगजेब के समय तक छुट–पुट रूप में चलता रहा था।[12] इससे यह स्पष्ट होता है कि चित्रकला औरंगजेब के काल में मरणासन्न तक पहुँच गई।

'पर्सी ब्राऊन' के अनुसार जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात मुगल चित्रकला भी चल बसी। इसका ब्राह्य रूप तो स्वर्ण तथा सुन्दर वस्तुओं में कुछ दिनों के लिए रहा, आगे के राजाओं के अधीन भी यह रही, किन्तु इसकी आत्मा जहाँगीर के साथ ही मर चुकी थी।[13] अर्थात जिस चित्र शैली का बीजारोपण मुगल बादशाह बाबर ने किया उसको हुमायूँ ने सींचकर अंकुरित किया। अकबर के समय यह चित्रशैली पौधा बन अपनी शाखाएँ फैलाने लगी, जो जहाँगीर के समय पेड पर कपोले फूट, फल व फूल देने लगे। शाहजहाँ की रूचि चित्रकला में न होने के कारण इस पेड में दीपक लग गई जो औरंगजेब के समय धराशाही हो धीरे–धीरे सूख गई। पूर्व अर्जित धरोहर सर्वथा तहस–नहस हो गई।

हाशिया

हाशिया का अर्थ – मुगल लघु चित्रों के चारों ओर किनारों पर एक आलेखन युक्त, अलंकरणात्मक या साधारण पट्टिका का निर्माण किया है, जो हाशिया के नाम से जानी गई है। मुगलकाल में चित्रों के किनारे बने हाशियों की चौड़ाई 1 सेंटीमीटर से लेकर 14 सेंटीमीटर तक की होती है।[14] हाशियों को चित्र के चारों ओर बनाने से चित्र अधिक सौन्दर्यपूर्ण एवं आकर्षक प्रतीत होने लगता है। मुगल लघु चित्रों में हाशिये बनाने का मुख्य उद्देश्य सौन्दर्य की पूर्ति का सबसे सर्वश्रेष्ठ साधन था। इन पर विभिन्न प्रकार से अलंकरण, पशु–पक्षी, वनस्पति, ज्यामितीय आकृतियाँ, फूल–पत्तियों को बनाकर अलंकारिक उद्देश्य की पूर्ति की जाती थी। मुगल कलाकारों ने आलेखनों को सौन्दर्य के साथ उपयोगिता पूर्ण भी बनाया। प्रत्येक वस्तु स्वयं में आकर्षक को समाहित किये रहती है तथा यह आकर्षक वस्तु की उपयोगिता, बनावट व सजावट पर निर्धारित होती है।

अलंकारिक साज–सज्जा से पूर्ण हाशियें के अंकन के पीछे मुगल शासकों द्वारा कलाकारों का सदैव कलात्मक प्रतिभा व अनुभूति को प्रोत्साहन प्रदान करने का उद्देश्य रहा है। हाशियों के माध्यम से चित्र की सीमाओं में सौन्दर्य वृद्धि तो होती है, साथ ही चित्र की अवधि, विस्तार व कीमत भी बढ़ जाती है।

(**चित्र – 1**)

'पर्सी ब्राऊन' का कथन सत्य है कि मुगल चित्रशैली में हाशियों का मुख्य चित्र से इतना सम्बन्ध था कि जहाँगीर के काल में कोई भी चित्र जब तक पूर्ण नहीं माना जाता था जब तक की इसके उत्कृष्ट रूप से सुसज्जित हाशियों से आवृत्त न किया गया हो, जो आगे चलकर चित्रकला का एक विशिष्ट लक्षण बन गया। चित्र के चारों ओर हाशिये व लेख सज्जा फारसी कला की देन है। मुगलकला के सन्दर्भ में [15] **'ल्यूबर हेजेक'** का कथन है कि मुगल चित्रशैली में हाशिया साज–सज्जा का प्रयोजन पाण्डूलिपि एवं व्यक्ति चित्रों में मूलतः भिन्न है, क्योंकि हाशिए–चित्रण की प्रवृत्ति पूर्ण रूप से सज्जायुक्त है।[16] हाशियों में, साज–सज्जा का प्रचलन 12वीं शताब्दी की फारसी कला में उपलब्ध होते हैं तथा इसका पूर्ण विकसित स्वरूप चौदहवीं शताब्दी की तबरेज की कला में दृष्टिगोचर होता है। हाशिया सज्जा की यह प्रवृत्ति हिरात, तिमूरिया व सफेविद कला केन्द्र में पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में निरन्तर अध्ययन रही।[17]

'ल्यूबर हेजेक' की दृष्टि में हाशियें साज–सज्जा सत्रहवीं शताब्दी की मुगल कला की विशेष उपलब्धी है।[18] अबुल फजल ने आईने–ए–अकबरी में उल्लेखित किया है कि चित्रशाला में कलाकारों के अतिरिक्त, साज–सज्जा तथा अलंकरण कार्य में विशिष्ट व्यक्ति ही सेवारत थे। कला विशेषज्ञ पर्सी ब्राऊन ने चित्ररीति के इस क्षेत्र में मुगल चित्रकारों की उपलब्धि को सर्वोपरी कहा।[19] इस तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि अलंकरणात्मक हाशियों को मुगल चित्रशाला में कला की एक विशिष्ट शाखा के रूप में स्थान प्राप्त है। शाहजहाँ को पुष्पों के प्रति विशेष रूचि होने के कारण भिन्न–भिन्न रूपों में संयोजित कर चौखटों पर फूलों के साथ पक्षियों को भी चित्रित किया। उद्यानों का मुगलों के दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। इसमें विभिन्न प्रकार के वृक्षों–चिनार, आम, जामुन, अनार आदि को स्थान दिया है। पुष्पित फूल व पौधों में काल्पनिक व वास्तविक रूपों का संयोजन किया, इनमें कमल, लिली, वाटर लिली, सूरजमुखी, डेफोडिल्स, गुलाब, पिंक जीनिया आदि के साथ कांटेदार, सीधी, चापाकार, त्रिशुलाकार पत्तियों का प्रयोग बीच–बीच में किया। राजाज्ञा मानते हुए 'मंसूर' जो कि जहाँगीर कालीन चित्रकार था ने सौ से अधिक फूलों की जातियों को संरक्षित कर चित्रों में स्थान दिया।[24]

सभी मुगल शासक वनस्पति के समान ही पशु–पक्षियों से प्रेम करते थे, इसी कारण हाशियों में, इन्हें भी मुख्य स्थान मिला। (चित्र–2) हाथी, चीता, लोमड़ी, चील (बाज), बगुला को चीनी अजगर की विशेषताओं के साथ हाशियों में अंकन किया। एक हाशियें के प्राकृतिक दृश्य में सिंह, हिरण, खरगोश तथा पक्षियों को तो चित्रित किया ही गया है, साथ–साथ अनेक काल्पनिक पशुओं को भी अंकित किया गया है। इनके अतिरिक्त मानवाकृतियों को दैनिक कार्य करते हुए भी दर्शाया गया है।[25] अकबर के काल में हाशिया की साज–सज्जा का विकास अधिक न होकर जहाँगीर के समय में अधिक उन्नत हुआ है। इस समय यह हाशियें स्वयं अपने में एक कला है। इन हाशियों को अत्यधिक सुसज्जित कार्य करके अपनी कला क्षमता को प्रदर्शित कर सके।[26]

जहाँगीर के समय हाशिया–सज्जा में पाश्चात्य चित्र विषयों का समावेश भी मिलता है, पाश्चात्य उत्तकीर्ण चित्रों की अनूकृतियों को संयोजित किया गया। जहाँगीर काल में युरोपियन प्रभाव संपूर्ण चित्रकला पर पड़ा। अतः हाशियों पर भी इनका प्रभाव पड़ना स्वभाविक था।

विषय

जहाँ तक हाशियों में अंकन के विषय रहे है वह शासकों से जुड़े थे। यह शासकों व दरबारी वर्ग आदि के आमोद–प्रमोद की इच्छा पूर्ति करते थे। मुगल कलाकारों ने हाशियों में निर्जीव, सजीव व जीवन उपयोगी वस्तुओं का उचित मात्रा में समावेश कर इन्हें विशेष स्थान प्रदान किया।

'चाल्स इलियट' के अनुसार मानवीय तथा प्राकृतिक दोनों ही प्रकार के आलेखनों में कलाकार ने प्राकृतिक दृश्य चित्रण के माध्यम से आनन्द, शक्ति, रहस्य विभिन्न उत्पन्न करने का प्रयास किया। मुगल चित्रकारों द्वारा सम्मेविद चित्र शैली के प्रभाव के फलस्वरूप रेखांकित लाइनों के बीच में खाली जगह पर फूल व पत्तियों द्वारा अलंकरणात्मक प्राकृतिक आकारों की बेले, लयबद्ध नमूनों के द्वारा सजाई गई। इन केन्द्रों में हाशिया–पट्टियों को सामान्य रूप में सुनहरे रंग में अलंकृत बेलबूटों द्वारा सज्जित किया गया है। उदाहरण 'बहारिस्तान' (दिनांकित 1595–97 बाडलियन लाइब्रेरी, आक्सफोर्ड) तथा 'बाबरनामा' रचनाकार (1600, ब्रिटिश म्यूजियम एण्ड लाईब्रेरी) में अलंकृत हशियें आलेखन है।

चित्रकला के तत्त्व – चित्रकला जीवन की अभिव्यक्ति है। प्रागैतिहासिक कला से ही मानव किसी न किसी धरातल पर अपनी भावनाओं को अंकित करता रहा। जिसके माध्यम से ही कला की उन्नति निरन्तर होती रही। चित्रकला द्वारा जीवन के प्रत्येक पहलू को स्पर्श करके उसे सुन्दर बनाने का प्रयास किया गया। यही कारण है कि आज सभी कौशल और कौतुहलों की गणना कला में होने लगी है। प्रत्येक काल की कला में आलेखन के तत्त्व एवं सिद्धान्त सदैव विद्यमान रहे हैं यह तत्त्व चेतन व ज्ञान को बल देने के साथ ही कलाकार की भावनाओं व विचारों को व्यक्त करने के लिये दृष्टिगत तत्त्वों को प्रयोग कर, सौन्दर्यमयी अनुभवात्मक ज्ञान को रूप प्रदान कर पाने में सफल हो जाता है। क्योंकि ष्जीम मसमउमदज पे जीम इंम व िचंपदज नेमक वित चंपदजपदहष[27] यह तत्त्वों का संयोजन बिखर गया तो चित्र उत्तम नहीं बनेगा चाहे विषय कितना ही आकर्षक क्यों न हो।

सभी युगों की कलाओं में वही मूल तत्त्वों को परिलक्षित किया हैं जिन्हें विद्वानों ने भारतीय कला के लिये निश्चित किये। कलाकार सौन्दर्य की आवश्यकताओं एवं शैली के अनुसार ही इन तत्त्वों को साज–सज्जा (विषय) में प्रयोग करता है। ये तत्त्व निम्न हैं – रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत व अन्तराल।

मुगलकालीन कलाकारों को ये समस्त तत्त्व विरासत स्वरूप ईरान तथा भारत की प्राचीन कला से प्राप्त हुए हैं। यह भी सत्य है कि यह तत्त्व स्वतन्त्र रूप से चित्र का निर्माण नहीं कर सकते। सदैव

एक से अधिक तत्त्वों के द्वारा ही सौन्दर्य पूर्ण चित्र का संयोजन कर पाते है। **'वाचस्पति गैरोला'** के अनुसार – आनन्दानुभूति या सौन्दर्योत्कर्ष के लिए चित्र में रेखा, रंग, आकृति, भाव इन सबका ऐसा संयोजन होना चाहिए कि वे एक दूसरे से उत्कर्ष को व्यक्त करे। यही संगीत है और इसका चित्रकला में वही स्थान है जो संगीत में लय और वादक में गति का है।[28] ऐसे अनेक रूपाकार जो रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत, अन्तराल में भिन्न होने पर भी व्यवाहारिक रूप से निकट होते हैं, जिन्हें देखकर दूसरी वस्तु का स्मरण हो आता है। ऐसे रूपाकार जो परस्पर उपयोग की दृष्टि से एक दूसरे से सम्बद्ध न होने पर भी साथ में बार–बार प्रयुक्त करने से सामंजस्य उत्पन्न करते है। विभिन्न रेखाओं की आवृत्ति व रंगों को धूमिल करके पृष्ठभूमि का प्रयोग कर मुगल कलाकारों ने सामंजस्यपूर्ण चित्रिण किया है। सन्तुलन कला सृजन का सिद्धान्त है, जिसके अनुसार चित्रण के सभी तत्त्व इस प्रकार व्यवस्थित हो कि उनका भार समस्त चित्र तल पर समूचित रूप से वितरित रहे।[29] रचना के किसी एक पक्ष में ही नहीं अपितु रचना में प्रयुक्त सभी तत्त्वों के सामग्री समायोजन में पूर्ण साम्यावस्था ही सन्तुलन है।[30] मुगलकालीन कलाकारों ने सन्तुलन को ध्यान में रखकर चित्रण किया है, जिससे सज्जा (आलेखन) असंतुलित नहीं हो पाये। अकबरकालीन लघु चित्रों के संयोजन अपने अभूतपूर्व सन्तुलन, निश्चत भार संयोजन के लिए जाने जाते हैं।[31] हाशियों में समान आकार सज्जा द्वारा में निश्चल तथा गति का भाव उत्पन्न होता है।

तत्कालीन कलाकारों ने अधिकांशतः हाशियों के चारों ओर से बराबर न रखकर केवल तीनों ओर से ही उनकी चौड़ाई बराबर रखी है। चौथा भाग उसका आधा रखा है फिर भी यह असंतुलित प्रतीत नहीं होते। मुगल चित्रकारों ने चित्र की आवश्यकता को ध्यान रखते हुए प्रतिमानों का प्रयोग किया है। रूप, रेखा, वर्ण, तान आदि तत्त्वों को भिन्नता से स्थानत्व का प्रयोग कर आवश्यकतानुसार आकारों को चित्रित किया है, क्योंकि मनौवैज्ञानिक अध्ययन के पश्चात यह ज्ञात हुआ है कि मानव चित्रकार ने इन श्रेष्ठ तत्त्वों का समावेश कर चित्र को सर्वश्रेष्ठ बनाया है।

संदर्भ :–

1. के.एम. नजिम्कर, भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण, पृ.सं. 176
2. हरमन गोयट्ज, आर्ट ऑफ दी वर्ल्ड (इण्डिया), न्यूयार्क, 1959, पृ.सं. 210
3. सर जी बर्डबुड, इन्डस्ट्रीयल आर्ट्स ऑफ इण्डिया, लंदन, 1880, पृ.सं 18
4. लोरेन्स बिनयन, एशियाटिक आर्ट्स, स्कल्पचर एवं पेंटिग, पृ.सं. 121
5. पर्सी ब्राऊन, इण्डियन पेंटिग, कोलकत्ता, 1947, पृ.सं. 49
6. पर्सी ब्राऊन, इण्डियन पेंटिग, कोलकत्ता, 1947, पृ.सं. 89
7. एच.के.शेरवानी, कल्चर सिन्थेसिस इन मिडिवल इण्डिया, जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, पृ.सं. 49
8. एडवर्डस एण्ड गैरेट, मुगल रूल इन इण्डिया, पृ.सं. 324
9. पर्सी ब्राऊन, इण्डियन पेंटिग, कोलकत्ता, 1947, पृ.सं. 50
10. तुजुक–ए–जहाँगीरी (अन.ए.राजर्स, सम्पादन, एच.बेवरिज) द्वितीय खण्ड, पृ.सं. 20–21
11. रायकृष्ण दास, भारत की चित्रकला, वाराणसी, 1939, पृ.सं. 156
12. काक एवं आर्चर, पृ.सं. 92–104, फलक पृ.सं 407,418
13. पर्सी ब्राऊन, इण्डियन पेंटिग, कोलकत्ता, पृ.सं. 89
14. एस.पी.वर्मा, एन इलस्ट्रेटिड मैन्यूस्क्रिप्ट ऑफ दी दीवाने हाफिज ऑफ अकर्बस कोर्ट इन दी कलैक्शन ऑफ बली अहद, रामपुर, रूपलेखा, वॉल्यूम 50, पृ.सं. 11
15. पर्सी ब्राऊन, इण्डियन पेंटिग अण्डर द मुगल्स, (1550–1750) आक्सॅफोर्ड, 1924, पृ.सं. 91
16. ल्यूबर हेजेक, इण्डियन मिनियचर्स ऑफ दी मुगल स्कूल, लन्दन, 1960, पृ.सं. 37

17. ई. कुहनेल एवं एच. गोयट्स, इण्डियन बुक पेटिंग, लन्दन 1960, पृ.सं. 45
18. ल्यूबर हेजेक, इण्डियन मिनियचर्स ऑफ दी मुगल स्कूल, लन्दन, 1960, पृ.सं. 13
19. पर्सी ब्राऊन, इण्डियन पेंटिग अण्डर द मुगल्स, (1550–1750) आक्सॅफोर्ड, 1924, पृ.सं. 139
20. कुमार सरस्वती, बर्डस इन मुगल आर्ट, मार्ग, वॉल्यूम – 2, नं. 2
21. डॉगलेस बैरेट एवं बेसिल ग्रे, पेटिंग ऑफ इंडिया, क्वीलैण्ड, 1973, पृ.सं. 101
22. ल्यूबर हेजेक, इण्डियन मिनियचर्स ऑफ दी मुगल स्कूल, लन्दन, 1960, पृ.सं. 37
23. बैरेट एवं बेसिल ग्रे, पेटिंग ऑफ इंडिया, क्वीलैण्ड, 1953, पृ.सं. 102
24. अशोक कुमार दास, मुगल पेटिंग डयूरिंग जहाँगीर्स टाइम, कोलकत्ता, 1978, पृ.सं. 185–186
25. एस.पी.वर्मा, एन इलस्ट्रेटिड अकबरनामा ऑफ सेविनटीथ सेन्चुरी मुगल स्कूल, पृ.सं. 52, रूपलेखा, वॉल्यूम – 51
26. कुमार सरस्वती, बर्डस इन मुगल आर्ट, मार्ग वॉल्यूम – 2
27. डिक्शनरी ऑफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्टस, सम्पादक जॉन एल, स्टाउटेनबर्ग
28. वाचस्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला का इतिहास, पृ.सं. 29
29. एस.एल.क्रेब्स, दि आर्ट कलर एण्ड डिजाईन, पृ.सं. 146
30. पुर्णिमा पाण्डे, कला के मूल तत्व और सिद्धान्त, पृ.सं. 86
31. बाई एस. हायलव, मिनियेचर्स ऑफ बाबरनामा, इन्ट्रोडक्शन, पृ.सं. 26